[2020] 3 एस.सी.आर. 697

विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 27598/2016

आत्मा राम

बनाम

चरणजीत सिंह

(विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 27598/2016) 10 फरवरी 2020

न्यायमूर्ति एन.वी. रमना एवं न्यायमूर्ति रामसुब्रमण्यम

धारा 149, आदेश 6 नियम 17 सी.पी.सी. 1908-उत्तरदाता द्वारा 1994 में किये गये एक करार के तहत याचिकाकर्ता को अचल सम्पत्ति बेचने हेतु सहमति व्यक्त की गयी - अग्रिम धनराशि का भुगतान किया गया- याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 1996 में यह दावा करते हुए विधिक नोटिस जारी की गयी कि जब विनिर्दिष्ट अनुपालन की तिथि (दिनांक 07.10.1996) आयी तो उत्तरदाता द्वारा यह किसी तृतीय पक्ष के साथ दीवानी मुकदमेबाजी के लम्बन , जो विक्रय विलेख के निष्पादन के बाधा के रूप में है , के तथ्य का खुलासा किया गया - याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 1999 में आज्ञापक व्यादेश के लिए वाद दाखिल किया गया- उत्तरदाता द्वारा इस आधार पर वाद को निरस्त कराना चाहा गया कि उक्त वाद विक्रय करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन को लागू करने के लिए पोषणीय नहीं था- विचारण न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता को निर्देश दिया गया कि वह तकनीकि आपत्ति को दूर करने के लिए अपेक्षित न्यायशुल्क का भुगतान करे - याचिकाकर्ता द्वारा न्यायशुल्क की कमी का भुगतान किया गया- विचारण न्यायालय द्वारा वाद आज्ञप्त किया गया - जिसे प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पलट दिया गया - किन्तु उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट किया गया - अभिनिर्धारित किया गया कि यदि वाद वास्तव में विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए था तो याचिकाकर्ता को कम से कम अनुबन्ध में उल्लिखित विक्रय प्रतिफल के आधार पर वाद का मूल्यांकन करना चाहिए था- किन्तु उसने ऐसा नहीं किया - यदि वाद केवल आज्ञापक व्यादेश के लिए था (जोकि वह वास्तव में था) याचिकाकर्ता के लिए एकमात्र रास्ता यह था कि वह आदेश 6 नियम 17 सी.पी.सी. के तहत संशोधन की याचना करता - यदि ऐसा प्रार्थना -पत्र दाखिल किया गया होता तो वह या तो परिसीमा के आधार पर निरस्त कर दिया गया हो या यदि वह स्वीकार किया जाता तो संशोधन द्वारा अन्तःस्थापित विनिर्दिष्ट अनुपालन की याचना सामान्य रूप में वाद -पत्र की तिथि को नहीं मानी गयी होती- अतः याचिकाकर्ता द्वारा वाद -पत्र को उसी रूप में बनाये रखने के लिए लेकिन न्यायशुल्क की कमी का भुगतान करने की अनुमति मांगने के लिए एक शॉर्टकट निकाला गया जैसे कि पहली बार में जो दायर किया गया था वह वास्तव में विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए एक वाद था- विशेष रूप से विनिर्दिष्ट अनुपालन के वाद में किस तरह के संदिग्ध दृष्टिकोण की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 की धारा 20 के तहत विनिर्दिष्ट अनुपालन का अनुतोष विवेकाधीन है- विचारण न्यायालय ने एक जटिल तर्क से वाद को विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए एक माना और याचिकाकर्ता को न्यायशुल्क की कमी का भुगतान करने की अनुमति दी- मूल दोष ठीक हो जाने और उसके अन्तिमता प्राप्त हो जाने के बावजूद परिसीमा के आधार पर याचिकाकर्ता पर वाद न चलाने का उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण

दोषपूर्ण हो सकता है- किन्तु याचिकाकर्ता को धारा 149 सी.पी.सी. का सहारा लेकर इसका लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जाएगी, विशेषकर जब उसने वाद दायर किया हो (विक्रय करार के तहत नियत तिथि के तीन साल से अधिक के बाद) केवल आज्ञापक व्यादेश के लिए, उसी के समान मूल्यांकन किया और तद्नुसार न्यायशुल्क का भुगतान किया, लेकिन वाद को खारिज करने के लिये एक प्रार्थना-पत्र के आने के बाद उचित न्यायशुल्क का भुगतान करने के फैसला किया- विचारण न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन की पारित की गयी डिक्री को प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा उचित रूप से पलट दिया गया- उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा अभिनिर्धारित करके सही गया गया- विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 की धारा 16(सी), 20।

विशेष अनुमति याचिका को निरस्त करते हुए न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया कि-

1.1 यह सच है कि धारा 149 सी.पी.सी. न्यायालय को किसी भी स्तर पर किसी व्यक्ति को दस्तावेज़ पर वास्तव में देय न्यायशुल्क का पूरा या आंशिक भुगतान करने की अनुमति देने का विवेकाधिकार प्रदान करती है, लेकिन जिसका भुगतान नहीं किया गया है। एक बार जब न्यायालय इस तरह के विवेक का प्रयोग करता है और न्यायशुल्क का भुगतान उक्त निर्णय के अनुसार किया जाता है, तो धारा 149 के तहत दस्तावेज़ का वही बल और प्रभाव होगा जैसे कि इस तरह के शुल्क का भुगतान पहली बार में किया गया हो। लेकिन इस मामले में सवाल केवल परिसीमा का नहीं था। जैसा कि हमने पहले कहा है , विक्रय करार दिनांक 12.10.1994 का था। याचिकाकर्ता के अनुसार अनुबंध के तहत दायित्वों की पूर्ति के लिए अंतिम तिथि दिनांक 07.10.1996 तय की गई थी। याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 12.11.1996 को एक विधिक नोटिस जारी किया गया था। लेकिन वादपत्र स्वयं दिनांक 13.10.1999 को प्रस्तुत किया गया था जो अनुबंध के निष्पादन के लिए विक्रय करार के तहत तय की गई तारीख दिनांक 07.10.1996 से तीन साल से अधिक थी। (हालांकि याचिकाकर्ता ने हमारे सामने दावा किया है कि वादपत्र दिनांक 3.10.1999 को प्रस्तुत किया गया था, निर्णय की प्रति और साथ ही विचारण न्यायालय के डिक्री में वादपत्र प्रस्तुत करने की तारीख दिनांक 13.10.1999 बताई गई है)। वादपत्र में मांगा गया अनुतोष, जैसा कि मूल रूप से प्रस्तुत किया गया था , प्रत्यर्थी को शेष विक्रय प्रतिपल प्राप्त करने और याचिकाकर्ता के पक्ष में अंतरण का एक दस्तावेज प्राप्त करने का निर्देश देने के लिए एक आज्ञापक व्यादेश के लिए थी। याचिकाकर्ता/वादी स्पष्ट रूप से उसके द्वारा मांगे गये अनुतोष की प्रकृति के प्रति सचेत था। यही कारण है कि उन्होंने वाद के दावाकृत अनुतोष का मूल्य 250/- रुपये आंका और 25/-रुपये के निर्धारित न्यायशुल्क का भुगतान किया। प्रत्यर्थी ने अपने लिखित कथन में वाद की पोषणीयता पर, जिस रूप में यह दायर किया गया था, आपत्ति जताई। इसलिए विचारण न्यायालय ने विवाद्यक संख्या 5 के रूप में एक विवाद्यक भी तय किया कि क्या वाद वर्तमान स्वरूप में चलने योग्य नहीं है ? दिनांक 12.10.2002 को विवाद्यक विरचित होने के बाद ही विचारण न्यायालय ने वाद को खारिज करने के लिए प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना -पत्र पर विचार किया। यह उस प्रार्थना-पत्र में है कि विचारण न्यायालय ने दिनांक 09.08.2003 को आदेश पारित कर याचिकाकर्ता/वादी को विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए की गई प्रार्थना को एक मानते हुए

न्यायशुल्क की कमी का भुगतान करने की अनुमति दी थी। इस विवाद्यक को संबोधित करने के बजाय कि क्या याचिकाकर्ता अप्रत्यक्ष रूप से विक्रय करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन की मांग कर सकता है, आज्ञापक व्यादेश के लिए एक अनुतोष के रूप में और आज्ञापक व्यादेश के लिए एक वाद में देय एक निर्धारित न्यायशुल्क का भुगतान करके, विचारण न्यायालय ने एक जटिल तर्क ने वाद को विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए एक माना और याचिकाकर्ता को न्यायशुल्क की कमी का भुगतान करने की अनुमति दी। वास्तव में, यदि वाद वास्तव में विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए था, तो याचिकाकर्ता को अनुबन्ध में उल्लिखित विक्रय प्रतिफल के आधार पर कम से कम वाद का मूल्यांकन करना चाहिए था। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। यदि वाद केवल आज्ञापक व्यादेश के लिए था (जो वास्तव में था), तो याचिकाकर्ता के लिए एकमात्र विकल्प आदेश VI, नियम 17 सीपीसी के तहत संशोधन की मांग करना था। यदि ऐसा कोई प्रार्थना-पत्र दायर किया गया होता, तो इसे या तो परिसीमा के आधार पर खारिज कर दिया जाता या यदि स्वीकार भी किया जाता तो संशोधन के माध्यम से विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए प्रार्थना की जाती। निस्संदेह इसे वाद-पत्र की तारीख से संबंधित नहीं माना गया होगा। इसलिए याचिकाकर्ता/वादी द्वारा वाद-पत्र को वैसे ही बनाए रखने के लिए, लेकिन न्यायशुल्क की कमी का भुगतान करने की अनुमति मांगने के लिए एक शॉर्टकट ढूंढा गया, जैसे कि पहली बार में जो दायर किया गया था। वह वास्तव में विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए एक वाद था। विशेष रूप से विनिर्दिष्ट अनुपालन के वाद में इस तरह के संदिग्ध दृष्टिकोण की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 की धारा 20 के तहत विनिर्दिष्ट अनुपालन का अनुतोष विवेकाधीन है। (पैरा 5-7) (703-G-H;704 A-H;705 A-C)

के.रहेजा कन्स्ट्रक्शन्स लिमिटेड बनाम एलायंस मिनिस्ट्रीज (1995) सप्ली.3 एस.सी.सी. 17; (1995) 3 एस.सी.आर. 960

तरलोक सिंह बनाम विजय कुमार (1996) 8 एस.सी.सी. 367; (1996) 3 एस.सी.आर. 879

वन विभाग कर्मचारी गृह निर्माण सहकारी संस्था मर्यादित बनाम रमेश चन्दर (2010) 14 एस.सी.सी. 596; (2010) 12 एस.सी.आर. 1045- को संदर्भित किया गया.

यह सच हो सकता है कि मूल दोष ठीक हो जाने और उसके अंतिमता प्राप्त हो जाने के बावजूद परिसीमा के आधार पर याचिकाकर्ता/वादी पर वाद न चलाने का उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण दोषपूर्ण हो सकता है। लेकिन हम याचिकाकर्ता को सीपीसी की धारा 149 का सहारा लेकर इसका लाभ उठाने की अनुमति नहीं देंगे, खासकर जब उसने वाद दायर किया हो (विक्रय करार के तहत तय तिथि के तीन साल से अधिक के बाद) केवल आज्ञापक व्यादेश के लिए, उसी के समान मूल्यांकन किया और तद्नुसार न्यायशुल्क का भुगतान किया, लेकिन वाद को खारिज करने के लिए एक प्रार्थना-पत्र के आने के बाद उचित न्यायशुल्क का भुगतान करने का निर्णय किया। चतुर चालें हमेशा लाभांश नहीं दे सकतीं। धारा 16(सी) के आसपास घूमने वाले दूसरे पहलू पर आते हुए, विचारण न्यायालय के निर्णय पर एक नजर डालने से पता चलेगा कि धारा के संदर्भ में याचिकाकर्ता/वादी की ओर से तत्परता और इच्छा के सवाल पर कोई विवाद्यक नहीं बनाया गया था।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 की धारा 16(सी) के आलोक में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.11.1996 को एक विधिक नोटिस जारी करना चुना और तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 07.10.1996 को उपनिबंधक के समक्ष निष्पादित एक हलफनामे के रूप में अन्यत्रता (alibi) बनाया। (प्रदर्श पी-2 के रूप में चिह्नित) यह दिखाने के लिए कि वह लेन-देन के निष्पादन के लिए निर्धारित समय के भीतर लेन -देन को पूरा करने के उद्देश्य से उपनिबंधक के समक्ष उपस्थित था, यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं था कि याचिका - कर्ता तीन साल बाद भी दिनांक 13.10.1999 को जब वाद-पत्र प्रस्तुत किया गया तैयार और इच्छुक रहा। दिनांक 12.11.1996 को विधिक नोटिस जारी करने के बाद वाद दायर करने में (दिनांक 13.10.1999 को) तीन साल की लंबी देरी के लिए याचिकाकर्ता की ओर से कोई स्पष्टीकरण नहीं आया। किसी मुकदमे में विनिर्दिष्ट के लिए वादी का आचरण बहुत महत्वपूर्ण होता है। एक व्यक्ति जो तत्परता और इच्छा का दावा करते हुए दिनांक 12.11.1996 को एक विधिक नोटिस जारी करता है, लेकिन जो केवल दिनांक 13.10.1999 को एक वाद दायर करता है और वह भी केवल उक्त अनुतोष से संबंधित एक निर्धारित न्यायशुल्क के साथ आज्ञापक व्यादेश के लिए प्रार्थना के साथ, क्या विनिर्दिष्ट अनुपालन के विवेकाधीन अनुतोष का हकदार नहीं होगा? इसलिए, हमारा मानना है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए विनिर्दिष्ट अनुपालन के निर्णय को उचित प्रकार से पलट दिया और उच्च न्यायालय ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के फैसले को बरकरार रखा। (पैरा 8-10) (705 A-H; 706 A-C)

निर्णय विधि संदर्भित [1995] 3 एस.सी.आर. 960 पैरा 7 संदर्भित

[1996] 3 एस.सी.आर. 879 पैरा 7 संदर्भित

[2010] 12 एससीआर 1045 पैरा 7 संदर्भित

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार; विशेष अनुमति याचिका (सिविल) सं०-275981/2016

आर.एस.ए. नं०-1244/2013 में पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के निर्णय एवं आदेश दिनांक 20.05.2016 से

याचिकाकर्ता के लिए बसंत आर, वरिष्ठ अधिवक्ता, समर विजय सिंह, अधिवक्ता।

उत्तरदाता के लिए अधिवक्तागण सौमेन तालुकदार, आर. डी. राठौर, वरिंदर कुमार शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति वी. रामासुब्रमण्यम द्वारा दिया गया था।

1. एक अचल संपत्ति के क्रय के लिए एक अनुबन्ध का धारक, जिसके आज्ञापक व्यादेश के लिए वाद (विचारण न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए एक वाद के रूप में माना गया) विचारण न्यायालय द्वारा आज्ञप्त किया गया था, लेकिन जो आज्ञप्ति प्रथम अपीलीय द्वारा निरस्त कर दी गयी थी तथा उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील पर पुष्ट की गई , वर्तमान विशेष अनुमति याचिका के साथ आयी है।

2. हमने याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.बसंत और प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सौमेन तालुकदार को सुना है।

3. विशेष अनुमति याचिका के निस्तारण हेतु आवश्यक संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं -

(i) दिनांक 12.10.1994 को याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थी के साथ एक अनुबन्ध किया गया था। इस अनुबन्ध के द्वारा, प्रत्यर्थी याचिकाकर्ता को प्लॉट नंबर 90, सेक्टर 21, औद्योगिक क्षेत्र, भिवानी में लगभग 1250 वर्ग गज की भूमि और कारखाना परिसर बेचने के लिए सहमत हुआ। अनुबन्ध के तहत निर्धारित कुल विक्रय प्रतिफल 4,38,000/-रूपये था। अनुबन्ध के निष्पादन के समय याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थी को 1,00,000/- रुपये की अग्रिम धनराशि का भुगतान किया गया था। अनुबंध के तहत संविदा के अनुपालन की तिथि दिनांक 07.10.1996 निर्धारित की गई थी।

(ii) याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.11.1996 को एक विधिक नोटिस जारी किया जिसमें दावा किया गया कि जब विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए निर्धारित तिथि आई , तो उसने सम्व्यवहार को पूरा करने के लिए प्रत्यर्थी से संपर्क किया, और उस समय, प्रत्यर्थी ने विक्रय विलेख के निष्पादन में बाधा के रूप में तृतीय पक्ष के साथ कुछ दीवानी मुकदमेबाजी लंबित होने के बारे में खुलासा किया। इसलिए याचिकाकर्ता ने विधिक नोटिस में दावा किया कि प्रत्यर्थी को उक्त संपत्ति के संबंध में लंबित सभी मुकदमों का विवरण प्रस्तुत करना चाहिए और यदि कोई वाद लंबित नहीं है तो प्रत्यर्थी को 15 दिनों के भीतर विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए आगे आना चाहिए।

(iii) चूंकि विधिक नोटिस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली तो याचिकाकर्ता ने अतिरिक्त सिविल जज, सीनियर डिवीजन, भिवानी के न्यायालय में एक दीवानी वाद सी .एस. नं०-240/1999 दायर किया। वाद में की गई याचना एक आज्ञापक व्यादेश के लिए थी ताकि प्रत्यर्थी को शेष विक्रय प्रतिफल प्राप्त करने के बाद संबंधित संपत्ति के हस्तांतरण के सभी दस्तावेजों को निष्पादित करने का निर्देश दिया जा सके। यहां यह नोट करना प्रासंगिक है कि चूंकि वाद केवल आज्ञापक व्यादेश के अनुतोष के लिए दायर किया गया था, याचिकाकर्ता ने वाद का मूल्य केवल 250 रुपये रखा और 25 रुपये के निर्धारित न्यायशुल्क का भुगतान किया।

(iv) प्रत्यर्थी ने अनुबन्ध के निष्पादन सहित सभी बातों से इनकार करते हुए एक लिखित कथन दायर किया। उन्होंने जिस रूप में वाद दायर किया गया था, उसकी पोषणीयता पर भी प्रश्नचिन्ह उठाया। प्रत्यर्थी ने आगे दावा किया कि वाद परिसीमा द्वारा वर्जित था।

(v) अभिवचनों के आधार पर विचारण न्यायालय ने दिनांक 12.10.2002 को विचार के लिए आठ विवाद्यक तय किए। ये विवाद्यक इस प्रकार थे -

"(1) क्या वादी प्रतिवादी से वाद की संपत्ति 4,38,000/-रुपये में क्रय करने के लिए सहमत हुआ और दिनांक 12.10.1994 को अग्रिम धनराशि के रूप में 1,00,000/-रुपये का भुगतान किया, जैसा कि अभिकथन किया गया है ?

(2) क्या वादी याचना के अनुसार आज्ञापक व्यादेश का अनुतोष प्राप्त करने का हकदार है ?

(3) क्या वादी के पास वाद दायर करने का कोई अधिकार नहीं है ?

(4) क्या वादी के पास वाद दायर करने का कोई वाद कारण नहीं है ?

(5) क्या वाद वर्तमान स्वरूप में पोषणीय नहीं है ?

(6) क्या वाद आवश्यक पक्षकारों के कुसंयोजन एवं असंयोजन के दोष से दूषित है ?

(7) क्या वादी अपने स्वयं के कार्य और आचरण द्वारा वाद दायर करने से विबंधित है ?

(8) अनुतोष।"

(vi) लिखित कथन दाखिल करने के बाद प्रतिवादी ने इस आधार पर वाद को खारिज करने के लिए एक प्रार्थना-पत्र भी दिया कि विक्रय करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन को लागू करने के लिए आज्ञापक व्यादेश का वाद पोषणीय नहीं था। उक्त प्रार्थना-पत्र को विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 09.08.2003 को एक बहुत ही रोचक आदेश द्वारा निपटाया गया था जिसमें कहा गया था कि वाद वास्तव में विक्रय के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए था और पोषणीयता के संबंध में तकनीकि आपत्ति को निर्देश देकर दूर किया जा सकता है। याचिकाकर्ता/वादी को अपेक्षित न्याय शुल्क का भुगतान करना होगा। तदनुसार विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता/वादी को दिनांक 08.09.2003 को या उससे पहले न्यायशुल्क की कमी की भरपाई करने का निर्देश दिया।

(vii) दुर्भाग्य से प्रतिवादी ने विचारण न्यायालय के दिनांक 09.08.2003 के उपरोक्त आदेश को चुनौती नहीं दी। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता/वादी ने न्यायशुल्क की कमी का भुगतान किया और विचारण न्यायालय ने वाद को विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए एक माना।

(viii) एक बड़ी बाधा पर काबू पाने के बाद , विचारण न्यायालय ने दिनांक 03.02.2006 के एक फैसले द्वारा वाद को आज्ञप्त किया जिसमें याचिकाकर्ता को एक महीने के भीतर शेष विक्रय प्रतिफल राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया और प्रतिवादी को वादग्रस्त संपत्ति को सीधे HUDA से याचिकाकर्ता के नाम पर अंतरित करने का निर्देश दिया गया।

(ix) निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर, प्रतिवादी ने अतिरिक्त जिला न्यायालय भिवानी के समक्ष नियमित प्रथम अपील दीवानी अपील सं०-181/2006 दायर की। दिनांक 02.01.2013 के एक निर्णय द्वारा, जिला न्यायालय ने अपील स्वीकार की और विचारण न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया जिससे वाद खारिज हो गया।

(x) प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने चंडीगढ़ में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील आर .एस.ए. सं०-1244/2013 दायर की। उच्च न्यायालय ने दिनांक 20.05.2016 के निर्णय द्वारा द्वितीय अपील खारिज कर दी। उक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध वादी उपरोक्त विशेष अनुमति याचिका लेकर आया है।

4. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर . बसंत के तर्क का मुख्य आधार यह है कि दिनांक 09.08.2003 के आदेश द्वारा विचारण न्यायालय ने आज्ञापक व्यादेश के वाद को विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए एक माना और निर्देश दिया कि याचिकाकर्ता /वादी को न्यायशुल्क की कमी का भुगतान करना होगा और याचिकाकर्ता ने भी उक्त आदेश का अनुपालन किया है। इसलिए यह तर्क दिया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 149 के आधार पर, इस तरह के भुगतान का वही बल और प्रभाव होगा जैसे कि इस तरह के शुल्क का भुगतान पहली बार में ही किया गया हो। लेकिन , उच्च न्यायालय ने वाद को कालबाधित मान लिया। याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार , यह संहिता की धारा 149 के तहत विधि विरुद्ध है। उनका आगे का तर्क है कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम , 1963 की धारा 16(सी) के प्रभाव पर उच्च न्यायालय द्वारा मामले के तथ्यों के विशेष संदर्भ में उचित परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया था और इसलिए उच्च न्यायालय का निर्णय दूषित है।

5. हमने उपरोक्त तर्कों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है। यह सच है कि धारा 149 सी.पी.सी. न्यायालय को किसी भी स्तर पर किसी व्यक्ति को दस्तावेज़ पर वास्तव में देय न्यायशुल्क का पूरा या आंशिक भुगतान करने की अनुमति देने का विवेकाधिकार प्रदान करती है, लेकिन जिसका भुगतान नहीं किया गया है। एक बार जब न्यायालय इस तरह के विवेक का प्रयोग करता है और न्यायशुल्क का भुगतान उक्त निर्णय के अनुसार किया जाता है , तो धारा 149 के तहत दस्तावेज़ का वही बल और प्रभाव होगा जैसे कि इस तरह के शुल्क का भुगतान पहली बार में किया गया हो।

6. लेकिन इस मामले में सवाल केवल परिसीमा का नहीं था। जैसा कि हमने पहले कहा है, विक्रय करार दिनांक 12.10.1994 का था। याचिकाकर्ता के अनुसार अनुबंध के तहत दायित्वों की पूर्ति के लिए अंतिम तिथि दिनांक 07.10.1996 तय की गई थी। याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 12.11.1996 को एक विधिक नोटिस जारी किया गया था। लेकिन वाद-पत्र स्वयं दिनांक 13.10.1999 को प्रस्तुत किया गया था जो अनुबंध के निष्पादन के लिए विक्रय करार के तहत तय की गई तारीख दिनांक 07.10.1996 से तीन साल से अधिक थी। (हालांकि याचिकाकर्ता ने हमारे सामने दावा किया है कि वाद-पत्र दिनांक 03.10.1999 को प्रस्तुत किया गया था, निर्णय की प्रति और साथ ही विचारण न्यायालय के डिक्री में वाद-पत्र प्रस्तुत करने की तारीख दिनांक 13.10.1999 बताई गई है)। वादपत्र में मांगा गया अनुतोष, जैसा कि मूल रूप से प्रस्तुत किया गया था, प्रतिवादी को शेष विक्रय प्रतिफल प्राप्त करने और याचिकाकर्ता के पक्ष में अंतरण का एक दस्तावेज प्राप्त करने का निर्देश देने के लिए एक आज्ञापक व्यादेश के लिए थी। याचिकाकर्ता/वादी स्पष्ट रूप से उसके द्वारा मांगे गये अनुतोष की प्रकृति के प्रति सचेत था। यही कारण है कि उन्होंने वाद में दावाकृत अनुतोष का मूल्य 250/-रुपये आंका और 25/-रुपये के निर्धारित न्यायशुल्क का भुगतान किया। प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में वाद की पोषणीयता पर, जिस रूप में यह दायर किया गया था, आपत्ति जताई। इसलिए विचारण न्यायालय ने विवाद्यक संख्या 5 के रूप में एक विवाद्यक भी तय किया कि क्या वाद वर्तमान स्वरूप में चलने योग्य नहीं है? दिनांक 12.10.2002 को विवाद्यक विरचित होने के बाद ही विचारण न्यायालय ने वाद को खारिज करने के लिए प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना-पत्र पर विचार किया। यह उस प्रार्थना-पत्र में है कि विचारण न्यायालय ने दिनांक 09.08.2003 को आदेश पारित कर याचिकाकर्ता/वादी को विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए की गई प्रार्थना को एक मानते हुए न्यायशुल्क की कमी का भुगतान करने की अनुमति दी थी। इस विवाद्यक को संबोधित करने के बजाय कि क्या याचिकाकर्ता अप्रत्यक्ष रूप से विक्रय करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन की मांग कर सकता है, आज्ञापक व्यादेश के लिए एक अनुतोष के रूप में और आज्ञापक व्यादेश के लिए एक वाद में देय एक निर्धारित न्यायशुल्क का भुगतान करके, विचारण न्यायालय ने एक जटिल तर्क से वाद को विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए एक माना और याचिकाकर्ता को न्यायशुल्क की कमी का भुगतान करने की अनुमति दी।

7. वस्तुतः, यदि वाद वास्तव में विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए था, तो याचिकाकर्ता को अनुबन्ध में उल्लिखित विक्रय प्रतिफल के आधार पर कम से कम वाद का मूल्यांकन करना चाहिए था। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। यदि वाद केवल आज्ञापक व्यादेश के लिए था (जो वास्तव में

था), तो याचिकाकर्ता के लिए एकमात्र विकल्प आदेश 6 नियम 17 सी.पी.सी. के तहत संशोधन की मांग करना था। यदि ऐसा कोई प्रार्थना-पत्र दायर किया गया होता, तो इसे या तो परिसीमा के आधार पर खारिज कर दिया जाता (के. रहेजा कंस्ट्रक्शन लिमिटेड बनाम एलायंस मिनिस्ट्रीज) या यदि स्वीकार भी किया जाता तो संशोधन के माध्यम से विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए प्रार्थना की जाती। निस्संदेह इसे वाद-पत्र की तारीख (तरलोक सिंह बनाम विजय कुमार; वन विभाग कर्मचारी गृह निर्माण सहकारी संस्था मर्यादित बनाम रमेश चंदर) से संबंधित नहीं माना गया होगा। इसलिए याचिकाकर्ता/वादी द्वारा वाद-पत्र को वैसे ही बनाए रखने के लिए, लेकिन न्यायशुल्क की कमी का भुगतान करने की अनुमति मांगने के लिए एक शॉर्टकट ढूंढा गया, जैसे कि पहली बार में जो दायर किया गया था। वह वास्तव में विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए एक वाद था। विशेष रूप से विनिर्दिष्ट अनुपालन के वाद में इस तरह के संदिग्ध दृष्टिकोण की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 की धारा 20 के तहत विनिर्दिष्ट अनुपालन का अनुतोष विवेकाधीन है।

8. यह सच हो सकता है कि मूल दोष ठीक हो जाने और उसके अंतिमता प्राप्त हो जाने के बावजूद परिसीमा के आधार पर याचिकाकर्ता/वादी पर वाद न चलाने का उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण दोषपूर्ण हो सकता है। लेकिन हम याचिकाकर्ता को सीपीसी की धारा 149 का सहारा लेकर इसका लाभ उठाने की अनुमति नहीं देंगे, खासकर जब उसने वाद दायर किया हो (विक्रय करार के तहत तय तिथि के तीन साल से अधिक के बाद) केवल आज्ञापक व्यादेश के लिए, उसी के समान मूल्यांकन किया और तद्नुसार न्यायशुल्क का भुगतान किया, लेकिन वाद को खारिज करने के लिए एक प्रार्थना-पत्र के आने के बाद उचित न्यायशुल्क का भुगतान करने का निर्णय किया। चतुर चालें हमेशा लाभांश नहीं दे सकतीं।

9. धारा 16(सी) के आसपास घूमने वाले दूसरे पहलू पर आते हुए, विचारण न्यायालय के निर्णय पर एक नजर डालने से पता चलेगा कि धारा के संदर्भ में याचिकाकर्ता/वादी की ओर से तत्परता और इच्छा के सवाल पर विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 की धारा 16(सी) के आलोक में कोई विवाद्यक नहीं बनाया गया था। तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.11.1996 को एक विधिक नोटिस जारी करना चुना और तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 07.10.1996 को उपनिबंधक के समक्ष निष्पादित एक हलफनामे के रूप में अन्यत्रता (alibi) बनाया। (प्रदर्श पी-2 के रूप में चिह्नित) यह दिखाने के लिए कि वह लेन-देन के निष्पादन के लिए निर्धारित समय के भीतर लेन-देन को पूरा करने के उद्देश्य से उपनिबंधक के समक्ष उपस्थित था , यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं था कि याचिकाकर्ता तीन साल बाद भी दिनांक 13.10.1999 को जब वाद-पत्र प्रस्तुत किया गया तैयार और इच्छुक रहा। दिनांक 12.11.1996 को विधिक नोटिस जारी करने के बाद वाद दायर करने में (दिनांक 13.10.1999 को) तीन साल की लंबी देरी के लिए याचिकाकर्ता की ओर से कोई स्पष्टीकरण नहीं आया। किसी वाद में विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वादी का आचरण बहुत महत्वपूर्ण होता है। एक व्यक्ति जो तत्परता और इच्छा का दावा करते हुए दिनांक 12.11.1996 को एक विधिक नोटिस जारी करता है , लेकिन जो केवल दिनांक 13.10.1999 को एक वाद दायर करता है और वह भी केवल उक्त अनुतोष से संबंधित एक

निर्धारित न्यायशुल्क के साथ आज्ञापक व्यादेश के लिए प्रार्थना के साथ, क्या विनिर्दिष्ट अनुपालन के विवेकाधीन अनुतोष का हकदार नहीं होगा ?

10. इसलिए, हमारा मानना है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए विनिर्दिष्ट अनुपालन के निर्णय को उचित प्रकार से पलट दिया और उच्च न्यायालय ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय को बरकरार रखा।

11. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है। खर्चे के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

……न्यायमूर्ति (एनवी रमन्ना) ……

..... न्यायमूर्ति (वी. रामसुब्रमण्यम) 10 फरवरी, 2020

नई दिल्ली।

Digitally signed by PRAMOD SINGH YADAV
Date: 2023.11.06 15:45:29 IST
Reason: Translator Officer
Location: District and Sessions Court, Sitapur